* ओ३म् *

महर्षि दयानन्द और मूर्तिपूजा



लेखक:— पं० मुनीश्वरदेव सिद्धान्तशिरोमणि

प्रकाशक:— अभयानन्द सरस्वती
संचालक, दयानन्द मण्डल (पंजाब प्रान्त)
कार्यालय आर्य समाज कच्चा बाजार (अम्बाला छावनी)

धन्यवाद

इस पुस्तिका के लेखक श्री० पं० मुनीश्वर-देव जी सिद्धान्त शिरोमणि, महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का अति धन्यवाद किया जाता है कि जिन्हों ने सभा के प्रचार कार्य में व्यस्त रहते हुए भी मेरी प्रार्थना को स्वीकार कर यह अत्यन्त उपयोगी ट्रैक्ट तैयार करके दिया है।

अभयानन्द सरस्वती,
संचालक:—
दयानन्द मंडल पंजाब प्रान्त
कच्चा बाजार, अम्बाला छावनी।

सार्वदेशिक प्रेस, पाटौदी हाउस, दरियागंज, देहली।

❀ ओ३म् ❀

महर्षि दयानन्द और मूर्तिपूजा

ओ३म्——केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशोमर्या अपेशसे समुषद्भिरजायथाः ॥यजु० २९।३७॥

धर्माभिलाषी सत्संगी सज्जनो ! उपरिलिखित मंत्र में मनुष्य जीवन के दो मुख्य उद्देश्य—अज्ञानी को ज्ञानी बनाना तथा असहायों के सहायक बनना बतलाए गए हैं। इसी वेदाज्ञा के अनुसार १९ वीं शताब्दी के महा पुरुष, आदित्य ब्रह्मचारी, वैदिक विद्वान् महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने यह निश्चय किया कि जो अतुल वैदिक-ज्ञान प्रकाश मैंने अपने गुरु महामहिम परिब्राजकाचार्य दण्डी स्वामी विरजानन्द जी महाराज की सुखद-संगति से प्राप्त किया है उसे संसार के कोने २ में फैलाऊं, इसी निश्चय के अनुसार आप सं० १९२४ वि० के महा कुम्भ के मेले के अवसर पर हिन्दुओं के प्रसिद्ध

तीर्थ स्थान हरिद्वार में पधारे, वहां आपने चारों ओर पाखण्ड की प्रचुरता देख उसे निवारण करने के लिए तथा अज्ञानान्धकार को मिटाने के लिए ऊंचे टीले पर 'पाखण्ड खण्डनी पताका' लहराई। पताका का गगन मण्डल में लहरना था कि बड़े २ विशाल सन्यासियों तथा गुसाईंयों के मठ, उदासियों और निर्मलों के अखाड़े, नांगों और वैरागियों के डेरे, महन्तों और मण्डलेश्वरों की गद्दियां, डोलने लगीं, खाली होने लगीं, और सर्व साधारण की दृष्टि सीधी भगवीं पताका पर गड़ने लगी। पाखण्ड खण्डनी पताका वाला साधु कहता था—

(क) मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध है।

(ख) शैव वैष्णव और शाक्त आदि सम्प्रदाय सब मिथ्या हैं।

(ग) गंगास्नान से पाप नष्ट नहीं होते।

(घ) तिलक, छाप, कण्ठी माला आदि के धारण से मुक्ति नहीं मिलती।

(ङ) एकादशी आदि व्रतों का माहात्म्य कपोल कल्पित है।

(च) मृतकश्राद्ध वेद और युक्ति विरुद्ध है।

(छ) ईश्वर जो सर्व व्यापक है उसका अवतार अयुक्त है।

(ज) पुराण—उप पुराण सब वाममार्गियों ने बनाये हैं।

(झ) यह महन्त, मण्डलेश्वर, मठाधीश, पण्डे, पुजारी आदि सब पाखण्डी, दम्भी और स्वार्थ सिन्धु हैं, इनके जाल से बचो।

(ञ) अनपढ़ ब्राह्मण शूद्र है, पठित शूद्र ब्राह्मण है।

(ट) वेद पढ़ने का अधिकार मनुष्य मात्र को है।

(ठ) पतितों, यवनों व ईसाइयों को शुद्ध करो।

(ड) अछूतों को गले लगाओ।

(ढ) अनाथों और विधवाओं को पतित होने से बचाओ।

(ण) मांस, मदिरा, भांग, तम्बाकू आदि अभक्ष्य हैं।

(त) अपने आप को 'हिन्दू' मत कहो।

(थ) हिन्दू नाम विदेशी यवनों ने दिया है।

(द) हिन्दू शब्द अवैदिक है।

(ध) तुम अपने आपको 'आर्य' कहो।

(न) आर्य शब्द प्राचीन और वैदिक है।

(प) परस्पर मिलते समय जयरामजीकी, राधेश्याम, सीताराम, आदि शब्दोच्चारण सर्वथा अयुक्त एवं अवैदिक हैं।

(फ) परस्पर मिलते समय 'नमस्ते' शब्दोच्चारण सत्कार के लिए सर्वथा युक्त, प्राचीन एवं वैदिक है।

इस प्रकार सत्य सनातन वैदिक धर्म प्रचार से श्री स्वामी जी की चारों ओर धूम मच गई, सारे मेले में चर्चा थी तो श्री स्वामी जी की। यह चर्चा किसी

को भली जँची और किसी को बुरी, कोई स्वामी जी को नास्तिक कहता तो दूसरा आस्तिक, और कोई २ तो कहने लगा कि यह ईसाइयों का एजेण्ट है, क्या कभी दादा, परदादा, लगड़दादा और उन से भी पहिले की प्रचलित रीतियां–बातें–तिलक लगाना, माला धारण, ठाकुरजी का चरणामृत पान, गंगा मैया का स्नान, शिवलिंग पर जल का लोटा डालना, मूर्ति पर धूप, दीप, अक्षत, नैवेद्य चढ़ाना, मूर्तियों से मुरादें मांगना, मिन्नते मनाना, रावण-कंस आदि के वध के लिए ईश्वर का अवतार धारण, परस्पर मिलते समय सत्कार के लिए जयराम जी की, जय सीताराम, आदि का उच्चारण, १८ पुराणों का प्रमाण, एकादशी आदि का व्रत, भला यह झूठी हो सकती हैं। और भाई! क्या कभी जन्म का ब्राह्मण शूद्र और शूद्र ब्राह्मण बन सकता है? क्या कभी मुसलमान, ईसाई हिन्दू बन सकते हैं? क्या कभी विधवा स्त्री भी शादी करा सकती है? अरे देखो यह साधु कहता है कि तुम अपने आप को हिन्दू मत कहो? क्यों भाई! राम, कृष्ण, प्रताप, शिवाजी आदि सब क्या थे! क्या हिन्दू न थे!! क्या उन्होंने कभी हिन्दुत्व से इन्कार किया!!! "आर्य हो, आर्य कहो" यह नई बात हमें सिखाने यह आया है, यह तो

गंगा के बहाव को उलटना चाहता है, यह अनोखी बात है ! ऐसा कभी नहीं हो सकता !! अरे ! इस फकीर के जिसकी जन्म-जात का पता नहीं पीछे लगोगे तो पतित हो जाओगे ? नरक में जाओगे !! इस प्रकार सभी स्वार्थ सिन्धु अपनी २ अन्धी भेड़ों को समझा बुझा कर पुचकारने लगे, साधु जी की ओर से मुंह मोड़ने लगे।

विपरीत इसके जो लोग थोड़ी बहुत अपनी विद्या, बुद्धि व विचार शक्ति रखते थे, वह कहते थे कि भाई ! यह साधु क्या है बस विद्या का सूर्य है, वेद तो इस के कण्ठस्थ पड़े हैं। ओह ! युक्ति कितनी प्रबल है। विचार तो बड़े ही सुन्दर प्रकट कर रहा है। अरे भाई ! यदि हम पक्षपात की पट्टी उतार कर सोचें विचारें तो यह मानना पड़ेगा कि जो यह साधु कहता है वह बिल्कुल सत्य है, यथार्थ है। भाई ! किसी को शंका हो तो निवारण करलो, वह बार २ पुकार कर कहता है।

एक बोला कि चलो स्वामी जी से अनूपशहर वाले पं० हीरावल्लभ जी का जो संस्कृत व्याकरण के अपूर्व पंडित और दर्शन केसरी हैं और जिनको ऋग्वेद व यजुर्वेद कण्ठाग्र है, मूर्तिपूजा विषय पर शास्त्रार्थ करायें।

दूसरा बोला ठीक है, बस इसी से सत्यासत्य का

निर्णय हो जायगा। इस पर समय व तिथि सब निश्चित हो गया। पं० हीरावल्लभ शास्त्रार्थ के लिए पधारे, आपने सभा-स्थल में पहुँचते ही एक सुन्दर सिंहासन पर गोमती चक्र, बालमुकुन्द व शालिग्राम की मूर्तियां स्थापित कर ललकार कर कहा कि मैं आज यहां से तब उठूंगा, जब स्वा० दयानन्द जी के हाथ से इन मूर्तियों को भोग लगवालूंगा। इस के बाद संस्कृत में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, शास्त्रार्थ लगातार एक सप्ताह भर रहा, एक दिन तो नौ घण्टे लग गए, परन्तु पंडित जी साधु जी की प्रबल युक्तियों व प्रमाणों की काट न कर सके। तब आपने सभा-स्थल में खड़े होकर सहस्त्रों मनुष्यों के सन्मुख कहा कि:—

> "स्वामी जी जो कुछ कहते हैं वह सब सत्य है, युक्ति युक्त है और प्रामाणिक है। इनकी विद्या अगाध है। इनका शास्त्रानुशीलन अपार है। इनका पक्ष विजयी है, लो आज मैं यह सब मूर्तियां गंगा में प्रवाहित करता हूं। अब इस सिंहासन पर वेद विराजमान होगा।"

इस शास्त्रार्थ के परिणाम से स्वामी जी की ख्याति को चार चाँद लग गए, पाखण्डियों पर अनभ्र वज्रपात हुआ, पंडित-मण्डल पर विद्वत्ता की

मुहर लग गई। सत्याभिलाषी सर्व साधारण जनता ने मूर्तिपूजा की निस्सारता को समझ कर मूर्तियां जल में प्रवाहित करनी शुरू कर दीं। कंठी माला तिलक आदि से घृणा हो गई, अब तो उसे पक्का विश्वास हो गया कि 'पाखंड खंडनी पताका' वाले साधु जी जो कहते हैं उसी पर चलने व उसे मानने से ही हमारा कल्याण होगा। पोप–पाखंडियों के जाल से अब भोली भाली जनता छूट कर अपने आपको सुखावस्था में देखने लगी। अब जहां पहिले, लोग स्वामी जी के पास जाने में संकोच करते थे, वहां अपार भीड़ होने लगी।

एक बार स्वामी जी ने अपने प्रवचन में सबको ललकार कर कहा—

> "यदि कोई मूर्ति पूजा को वेद प्रतिपादित सिद्ध कर देगा तो मैं सन्यास त्याग कर तिलक त्रिपुण्ड्रादि धारण कर लूंगा अन्यथा विपक्षी को मूर्तियां उठानी होंगी, और मन्दिरों में वैदिक पाठशालाएं स्थापित करनी होंगी।"

पुनः एक बार एक पौराणिक के यह कहने पर कि श्री चतुर्भुज जी पक्के मूर्तिपूजक हैं, उनकी युक्तियां भी बड़ी प्रबल हैं। इस पर स्वामी जी ने ललकार कर कहा कि:—

"उन्हें शास्त्रार्थ के लिये बुलाओ, यदि शास्त्रार्थ में चतुर्भुज जी मूर्तिपूजा को वेद प्रतिपादित सिद्ध कर दें तो हम उन्हें ५००) रु० देंगे।"

परन्तु अन्त तक वे स्वामी जी के सन्मुख न आ सके।"

भगवीं पताका वाले साधु जी मूर्तिपूजा के निम्न लिखित १६ दोष बता कर सर्वसाधारण को इस अवैदिक कर्म से दूर रहने का उपदेश करते थे:—

१—वेद विरुद्ध होने से मूर्तिपूजा अधर्म है।

२—उसमें करोड़ों रु० व्यय करके दरिद्र होते हैं, और उसमें प्रमाद होता है।

३—स्त्री पुरुषों का मन्दिर में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं।

४—इसी को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मानके पुरुषार्थ रहित होकर मनुष्य अपना जन्म व्यर्थ गँवाता है।

५—नाना प्रकार की विरुद्ध स्वरूप नाम चरित्र युक्त मूर्तियों के पुजारियों का ऐक्य मत नष्ट होके विरुद्ध मत में चल कर आपस में फूट बढ़ा के देश का नाश करते हैं।

६—उसी के भरोसे में शत्रुओं का पराजय और अपनी विजय मान बैठ रहते हैं। उनका पराजय होकर राज्य, स्वातंत्र्य, और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भटियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक विध दुःख पाते हैं।

७—जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन व नाम पर पत्थर धरें, तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता व गाली प्रदान करता है, वैसे ही जो परमेश्वर के उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्तियां धरते हैं, उन दुष्ट बुद्धिवाले मनुष्यों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे।

८—भ्रान्त होकर मन्दिर २ देश देशान्तर में घूमते २ दुःख पाते, धर्म, संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते, चोर आदि से पीड़ित होते, ठगों से ठगे ठगाते रहते हैं।

९—दुष्ट पुजारियों को धन देते हैं। वे उस धन को वेश्या, पर स्त्री गमन, मद्य मांसाहार, लड़ाई बखेड़ों में व्यय करते हैं। जिससे दाता को सुख का मूल नष्ट हो कर दुःख होता है।

१०—माता पिता आदि माननीयों का अपमान कर पाषाणादि मूर्तियों को मान करके कृतघ्न हो जाते हैं।

११—उन मूर्तियों को कोई तोड़ डालता या चोर ले जाता है तब हा हा कर के रोते रहते हैं।

१२—पुजारी पर स्त्रियों के संग और पुजारिन पर पुरुषों के संग से प्रायः दूषित हो कर स्त्री पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं।

१३—स्वामी-सेवक की आज्ञा का यथावत् पालन न होने से परस्पर विरुद्ध भाव हो कर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं।

१४—जड़ का ध्यान करने वालों की आत्मा भी जड़ बुद्धि हो जाती है, क्योंकि ध्येय का जड़ता धर्म अन्तः करण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है।

१५—परमेश्वर ने सुगंधि से, युक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिए बनाये हैं, उनको पुजारी जी तोड़ कर न जाने उन पुष्पों की कितने दिन तक सुगन्धि आकाश में चढ़ कर वायु जल की शुद्धि करता, और पूर्ण सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होता, उसका नाश मध्य में ही कर देते हैं पुष्पादि कीच के साथ मिल सड़ कर उल्टा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या परमात्मा ने पत्थर पर चढ़ाने के लिए पुष्पादि सुगन्ध युक्त पदार्थ रचे हैं।

१६—पत्थर पर चढ़े हुए पुष्प, चन्दन और अक्षत आदि सबका जल मृत्तिका के संयोग होने से मोरी व

कुण्ड में आकर सड़के इतना उससे दुर्गन्धि आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का। और सहस्रों जीव उसमें पड़ते, उसी में मरते और सड़ते हैं। ऐसे अनेक दोष मूर्तिपूजा के करने से आते हैं।

अतः इस दोष युक्त कर्म को सर्वथा त्याग देना चाहिए। वह कोपीन धारी सच्चा साधु अपने प्रचार में कपोल कल्पित एवं अवैदिक पंचायतन—शिव, विष्णु, अम्बिका, गणेश और सूर्य—पूजा के स्थान पर सच्ची वैदिक पंचायतन देव पूजा व मूर्तिपूजा इस प्रकार बताया करते थेः—

"ये पांच—माता, पिता, आचार्य, अतिथि और पत्नी के लिए पति तथा पति के लिए पत्नी—मूर्तिमान् देव हैं जिन के संग से मनुष्य देह की उत्पत्ति, पालन, सत्य शिक्षा, और विद्या सत्योपदेश की प्राप्ति होती है। ये ही परमात्मा को प्राप्त होने की सीढियां हैं, इनकी सेवा न करके जो पाषाणादिमूर्ति पूजते हैं, वे अतीव पामर नरक गामी हैं।"

उस सच्चे साधु योगी का यह दृढ़ मत था कि इस मूर्ति पूजा के कारण ही देश में, भूख, कंगाली और बेकारी है, इसी के कारण रामचन्द्र श्री कृष्ण सरीखे पूर्वजों की घोर निन्दा व उपहास होता है। इसी के कारण सोमनाथ जैसे विशाल मन्दिरों को तोड़ कर

महमूद गजनवी १८ करोड़ के बहुमूल्य रत्न निकाल कर गजनी लेजाने का साहस कर सका। इसी के कारण देश वैभव हीन तथा पराधीन बना। हाय! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए, क्यों परमेश्वर की भक्ति न की। अरे! जितने विश्वास से मूर्तियों की पूजा की है यदि उतनी कहीं शूरवीरों की पूजा करते तो भी तुम्हारा कल्याण हो जाता।

वह वैदिक विद्वान् कहता था कि ईश्वर—

वेद की (अज एक पाद०) ऋचा के अनुसार ईश्वर अजन्मा है। (स पर्यगाच्छुक्रमकायम्०) ऋचा के अनुसार सर्व व्यापक अकाय=शरीर रहित, अनादि है।

(न तस्य प्रतिमा अस्ति) मंत्र के अनुसार उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा, परिमाण, सादृश्य व मूर्ति नहीं है। इस लिए:—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूति मुपासते।
ततो भूय इवते तमो य उसंभूत्यां रता। यजु०

के अनुसार जो अनुत्पन्न कारण रूप प्रकृति की ब्रह्म के स्थान पर उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं। और जो कार्य रूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और

मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान पर करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार में अर्थात् महा मूर्ख चिर काल तक घोर दुःख रूप नरक में गिर के महा क्लेश को पाते हैं। अतः मूर्तिपूजा वेद विरुद्ध होने से सर्वथा त्याज्य है।

देखो तुम्हारे पुराण भी मेरी बात की पुष्टि करते हैं:—

नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।

अर्थात् जल के तीर्थ तीर्थ नहीं होते और मट्टी, शिला, पत्थर के देवता देवता नहीं होते। और भी

मृच्छिलाधातु दार्वादि मूर्तां वीश्वर बुद्धयः।
क्लिश्यन्ति तपसा मूढाः परां शान्तिं न यान्ति ते।

अर्थात् जो अज्ञानी जन मट्टी, शिला, धातु अथवा काष्ठ आदि की बनी मूर्ति में ईश्वर बुद्धि रख कर पूजते हैं वे अत्यन्त क्लेश भोगते हैं और जीवन में कभी शान्ति नहीं पाते।

भाई ? कहां तक छिपायें, भागवत में तो मूर्तिपूजक को भार ढोने वाले बैल व गधे के समान लिखा है।

साधु की साधना सफल

साधु जी का उद्देश्य पूर्ण हुआ, गत पंचसहस्रशताद्रियों से सर्व साधारण के हृदयों पर अनधिकार रूप से अधिकार जमाने वाले महाबली अज्ञान-तम-तस्कर के पांव उखड़ने लगे।"

मन्दिरों में वैदिक पाटशालाएं खुलने लगीं, पोपों पाखण्डियों के अड्डे खाली होने लगे। कण्ठी, माला, और मूर्तियां स्वतः गंगा की निर्मलधारा में बहती हुई दीखने लगीं, विधवा विवाह का यत्र तत्र समर्थन होने लगा, यवनों व ईसाइयों की शुद्धि के लिए व्यवस्था पत्र प्रकाशित होने लगे। कर्मणा वर्णव्यवस्था की पुष्टि होने लगी, अछूत पन को वैधानिक तौर पर मिटाया जाने लगा, मदिरा निषेध के लिए सरकारी आज्ञाएं जारी होने लगीं, बालविवाह, दहेज आदि की प्रथाओं पर सरकारी वज्रपात होने लगा, आर्य भाषा राष्ट्रभाषा घोषित होने लगी, "वेद हमारा धर्म है, आर्य हमारा नाम," का दिव्य नाद चहुँ ओर गूंजने लगा। सचमुच गंगा का प्रवाह उलटता दीखने लगा, और साधु जी की सत्य सनातन वेदोक्त वाणी का आर्य समाजों, आर्योपदेशकों, आर्य ग्रन्थों द्वारा सर्वत्र प्रचार व प्रसार होने लगा। क्यों न हो ऐसा जब कि साधु ने सर्वस्व मेध कर जग के भले की सोची हो।

"बोलो ऋषिदयानन्द की जय"

ओ३म